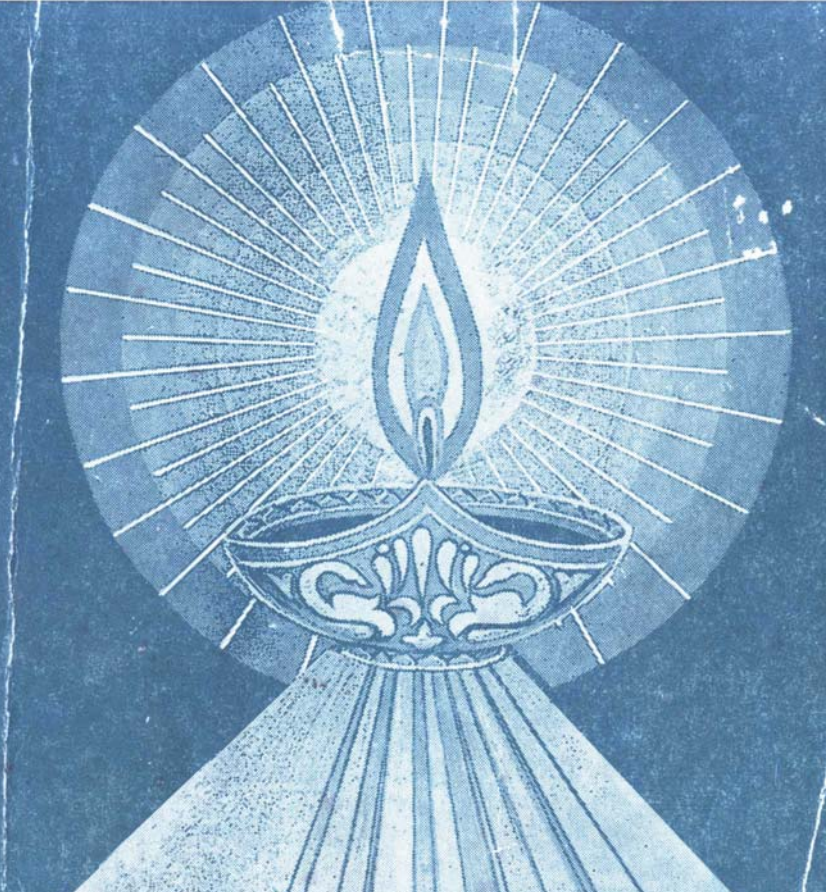

फकीरी मौज

प.पू.संत श्री आसाराम बापु

फकीरी मौत

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज

प. पू. संत श्री आशारामजी महाराज

"एक बार फकीरी मौत में डूबकर बाहर आ जाओ, फिर देखो संसारका कौन-सा भय तुम्हें भयभीत कर सकता है ? तुम शाहों के शाह हो ।"

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आशाराम आश्रम

साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५

FAKIREE MOUT
Sant Shri Asharamji Maharaj

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-५
फोन : ८६६३१०

मार्च, १९८६

मूल्य : रु. १-५०

अहमदाबाद में 'जीवन-मृत्यु' के बारे में पूज्यश्री द्वारा दिये गये इस प्रवचन में पूज्यश्री ने अपने अनुभवसिद्ध वचनों द्वारा जीवन और मौत के बारे में बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया है । भय से आक्रांत मानव समुदाय को निर्भयता का साक्षात् संदेश है उनका यह प्रवचन । पूज्यश्री का यह प्रवचन जैसे उनके स्वयं के निर्भय एवं लोकहित में रत जीवन का मूर्त रूप है ।

फकीरी मौत

स्वामीजी-

आज हम जीवन और मृत्यु के बारे में विचार करेंगे । बात तो बहुत छोटी है, मगर बड़ी अटपटी है । झटपट समझ में नहीं आती, परन्तु एक बार समझ में आ जाय तो जीवन की सब खटपट मिट जाय ।

इस रहस्य को न समझ सकने के कारण हम अपने को सीमित देशकाल के भीतर एक सामान्य श्रोता के रूप में यहाँ उपस्थित मान रहे हैं, मगर यदि यह रहस्य हमें ठीक से समझ में आ जाय तो तुरंत यह खयाल आएगा कि मैं ही अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप्त होकर सभी क्रियाएं कर रहा हूँ । मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं-तो फिर जीवन किसका और मौत किसकी ?

मृत्यु पर भिन्न भिन्न दृष्टि से विचार कर सकते हैं ।

व्यावहारिक दृष्टि से स्वयं की इच्छा के अनुकूल घटना घटे यह जीवन है और इच्छा के प्रतिकूल घटना घटे यह मृत्यु है । ऐसी मृत्यु तो दिन में अनेक बार होती है ।

लौकिक दृष्टि से पद-प्रतिष्ठा मिलना, वाह-वाही होना जीवन है और बदनामी होना मौत कहा जा सकता है ।

जिसे सर्वसाधारण लोग जीवन और मौत कहते हैं उस दृष्टि से देखें तो पंचभूतों से बने स्थूल शरीर का सूक्ष्म शरीर से संयोग जीवन है और वियोग मौत ।

और वेदान्त की दृष्टि से स्वयं के मूल स्वरूप में–आत्मस्वरूप में स्थित होना जीवन है और आत्मभाव से दूर जीवभाव में-परिच्छिन्न भाव में आना ही मृत्यु है ।

वास्तव में न तो कोई जीता है न ही कोई मरता है, केवल प्रकृति में परिवर्तन होता है । इस परिवर्तन में स्वयं की स्वीकृति तो जीवन लगता है और इस परिवर्तन में बिना इच्छा के खिंचा जाना–घसीटा जाना, जबरन उसको स्वीकार करना पड़े यह मौत जैसा लगता है ।

परन्तु मौत जैसा कुछ नहीं है ।

जगत में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सब परिवर्तनशील है । दूसरे शब्दों में–वह सब काल के गाल में समाता जा रहा है । चहचहाट करते हुए पक्षी, भागदौड़ करते हुए पशु, लहलहाते हुए पेड़–पौधे, वनस्पति, प्रकृति में हलचल मचाकर मस्तिष्क को चकरा देने वाले आविष्कार करते हुए मनुष्य–सभी एक दिन मर जाएँगे । कई मर गए, कई रोज मरते हुए हम अपने चारों ओर देख ही रहे हैं और भविष्य में कई पैदा हो–होकर मर जाएँगे । दादा गए, पिता गए, पड़ौसी गए, रिश्तेदार गए, मित्र गए और एक दिन हम भी चले जाएंगे इस

तथाकथित मौत के मुंह में । यह सब देखते हुए–जानते हुए–समझते हुए भी ४० वर्ष वाला ६०, ६० वाला ७० और ७० वाला १०० वर्ष देखने की इच्छा करता है । १०० वर्षवाला भी मरना नहीं चाहता । मौत किसीको पसन्द नहीं ।

मैंने सुना है कि अमेरिका में लगभग एक हजार ऐसी लाशें सुरक्षित पड़ी हैं इस आशा में कि आगे आनेवाले २० वर्षों में विज्ञान इतनी प्रगति कर लेगा कि इन लाशों को जीवनदान दे सकें । हर लाश पर १००० रुपया दैनिक खर्च हो रहा है क्योंकि उनको किसी भी प्रकार सुरक्षित रखना है । थोड़ी भी गल्ती से लाश खराब हो सकती है, सड़ सकती है क्योंकि उसमें जीवन तो है नहीं–वे मुर्दा हैं । भीतर से उनको बचाने-वाला तो रहा नहीं । अब बहुत महंगे रासायनिक द्रव्यों द्वारा उनको बचाया जा रहा है ।

लेकिन जो लोग छोड़ गए हैं अपनी लाशें, वे लोग करोड़ों डालर छोड़ गए हैं अपने लिये कि जब भी विज्ञान वह संजीवनी खोज ले, हमारी लाश को तुरंत जिंदा करें ।

कोई मरना नहीं चाहता ।

कब्र में जिसके पैर लटक रहे हैं वह बूढ़ा भी मरना नहीं चाहता । औषधियाँ खा खाकर जीर्ण–शीर्ण हुआ रोगी मरणशैया पर पड़ा अंतिम श्वासें ले रहा है,

डाक्टरों ने जवाब दे दिया है-वह भी मरना नहीं चाहता । लाशें भी जिन्दा होना चाहती हैं । प्रकृति का यह परिवर्तन किसीको पसन्द नहीं । यद्यपि यह सब जानते हैं :

'जो आया है सो जाएगा राजा रंक फकीर ।'

यह मान भी लिया जाय कि २० वर्ष में विज्ञान इतनी उन्नति कर ले और उन लाशों को फिर से जीवित कर दें, फिर भी वे कब तक टिकी रहेगी, अंत में तो जरा-जीर्ण होगी ही ।

बगीचे में वे के वे ही पेड़-पौधे, फूल-पत्ते यों के यों बने रहें, उनकी काट-कूट न की जाय, नये न लगाये जाय, उनको संवारा न जाएँ तो बगीचा बगीचा नहीं रहेगा, जंगल बन जाएगा । बगीचे में काट पीट होती रहे, नये पौधे लगते रहें, पुराने, सड़े-गले, पुष्पहीन, ठूंठ अथवा बिन जरूरी पौधे हटा दिये जाय और नये, सुगंधित, नवजीवन और नवचेतना से ओतप्रोत पौधे लगाये जाय यह जरूरी है ।

सम्राट सिकंदर ने बहुत लड़ाईयाँ लड़ी, बहुत युद्ध जीते, मगर अन्दर में उसकी गहरी इच्छा थी कि इस दौड़ धूप में कोई ऐसा अमृतजल पा ले जिसे पीकर उसे मरना न पड़े । अपने सामर्थ्य के द्वारा उसने वे नक्शे भी पा लिये । उनके सहारे वह उस गुफा तक भी पहुँच गया जिसके अन्दर उस अमृतजल के झरने के

मिलने का संकेत था । गुफा के बाहर ही उसने सभी अपने सैनिकों को रोक दिया और स्वयं बड़े उत्साह व प्रसन्नता से आहिस्ते आहिस्ते चौकन्ना होकर कदम बढ़ाने लगा । आज उसके जीवन की सबसे बड़ी ख्वाहिश पूरी होने जा रही थी । उसका हृदय उछल रहा था । थोड़ी ही दूर अपने सामने पैरों के पास ही उसने देखा-चांदी-सा श्वेत अमृतजल धीमी धीमी कल कल छल छल आवाज करता बह रहा है । आनन्द से उसका हृदय खिल उठा । मन नाच उठा । अब वह अपने को न रोक सका, घुटनों के बल नीचे झुका, अपने दोनों हाथ पानी में डुबाए । आह ! कैसा शीतल स्पर्श ! उसकी सारी थकान उतर गई । दोनों हाथों की अंजुली में उसने वह जल भरा, अंजुली को धीरे धीरे मुंह तक लाया, हृदय की धड़कन बढ़ी, होठ जलसुधा को पान करने को लालायित हो उठे । बस, जल होठों तक पहुँच ही गया था और वह पी ही लेता कि इतने में तो :

"खबरदार !"

उस निर्जन गुफा में किसी की आवाज गूंज उठी । चौंककर सिकंदर ने सिर ऊपर उठाया । देखा तो एक कौआ गुफा में उसके अतिरिक्त बैठा है । कौए ने कहा-"खबरदार सिकन्दर ! रुक जाओ, जल्दी न करो । जो भूल मैंने की वह तुम मत करो....। मुझे कोई साधारण कौआ मत समझना । कौओं का सम्राट हूँ । मैं भी

तुम्हारी तरह बहुत परिश्रम से इस अमृत की खोज करके यहाँ तक पहुँचा हूँ और मैंने यह जल पी लिया है। परन्तु इसे पीकर अब मुसीबत में पड़ गया हूँ।"

ऐसी गंभीर घड़ी में यह विघ्न सिकन्दर को अच्छा नहीं लगा, फिर भी धीरज से वह उसकी बात सुनने लगा। कौए ने आगे कहा-"तुमको यह जल पीना हो तो अवश्य पीओ सिकन्दर, लेकिन मेरी बात पूरी सुन लो। यह जल पीकर मैं अमर हो गया हूँ। जो कुछ जीवन में करने की इच्छा थी वह सब अब मैं कर चूका हूँ। जितना घूमना था घूम लिया, सुनना था सुन लिया, गाना था गा लिया, खाना था खा लिया, जो भी मौज करने की इच्छा थी सब कर ली। अब करने के लिये कुछ बचा हो नहीं। अब मैं क्या करूँ? अब यह जीवन मेरे लिये भार बन गया। मैं अब मरना चाहता हूँ, परन्तु मर नहीं सकता। मरने के लिये पानीं में कूदा, परन्तु पानीने मुझे डुबाया नहीं। पहाड़ों पर से कूदा, फिर भी मरा नहीं। आग की ज्वालाओं में कूदकर देखा। आग मेरे लिये शीतल हो गई, उसने भी मुझे जलाया नहीं। तलवार की धार से मैंने गर्दन घिसी, परन्तु धार खराब हो गई-गर्दन न कटी। यह सब इस अमृत-जल के कारण।

सोचा था कि अमर होकर सुखी होऊँगा, परन्तु अब पता चला कि मैंने मुसीबत मोल ले ली है। अब मेरी दशा सांपछछून्दर की दशा हो गई है। अब मैं न जी

सकता हूँ न ही मर सकता हूँ। तुमको यह जल पीना हो तो अवश्य पीओ, मैं मना नहीं करता, परन्तु मेरी तुमसे नम्र विनती है कि यहाँ से जाने के बाद मरने की कोई नवीन विधि का, औषधि या जहर का पता लगे जिससे कि मैं मर सकूं तो मुझे अवश्य समाचार देना।"

थोड़ी देर के लिए गुफा में नीरव शांति छा गई। सिकंदर के हाथ की अंगुलियाँ शिथिल हो गई। उनके बीच में से सारा अमृतजल गिर कर पुनः झरने में समा गया। दूसरी बार उसने झरने के जल में हाथ डालने की हिम्मत नहीं की, मन ही मन विचार करते हुए वह उठ खड़ा हुआ और पीछे मुड़कर गुफा के द्वार की ओर चल पड़ा आहिस्ते आहिस्ते, बिना अमृतजल पिये।

यह घटना सच हो कि झूठ, उससे मुझे कोई सरोकार नहीं, परन्तु इसमें एक तथ्य छुपा हुआ है कि जितना जीवन जरूरी है उतनी ही मौत भी जरूरी है। परिवर्तन होना ही चाहिये।

जिस जीवन के लिये स्वयं की लाश की सुरक्षा हेतु करोड़ों रुपयों का विल करके लोग चले गए, जिस जीवन को टिकाए रखने के लिये हम लोग भी अपार धन-सम्पत्ति इकट्ठी करने में लगे हुए हैं, दूसरों को दुखी करके भी जीवन के ऐश आराम के साधन संग्रह करने में हम लगे हुए हैं-वह जीवन टिक जाने के पश्चात् भी, अमर हो जाने के बाद भी क्या हमका आनन्द दे सकेगा? हम सुखी हो सकेंगे?....यह जरा विचारणीय है।

मौत से मनुष्य डरता है, परन्तु ऐसा जीवन भी कोई जीवन है जिसमें सदैव मौत का भय बना रहे? जहाँ पग-पग पर मृत्यु का भय हमें प्रकम्पित करता रहे? ऐसा नीरस जीवन, भयपूर्ण जीवन, मौत से भी बदतर जीवन है। ऐसा जीवन जीने में कोई सार नहीं। यह जीवन जीवन नहीं है।

यदि जीवन ही जीना है, यदि रसमय जीवन जीना है, यदि जीवन का स्वाद लेते हुए जीवन को जीना है तो मौत को आमंत्रित करो, मौत को बुलाओ और होशपूर्वक मौत का अनुभव करो। जो फकीर मौत का अनुभव कर चुके हैं उनका संग करके मौत की पोल को जान लो, फिर तो आप भी मस्त होकर उनकी तरह कह उठेंगे :

'जा मरने ते जग डरे, मोरे मन आनन्द।'

अभी तो जिसे तुम जीवन कहते हो वह जीवन नहीं और जिसे मृत्यु कहते हो वह मौत नहीं है। मात्र प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति में जो हो रहा है वह सब परिवर्तन है। जो पैदा होता दिख रहा है वही नष्ट होता नजर आता है। जिसका सर्जन होता दिखता है वही विसर्जन की ओर जाता नजर आता है। पेड़ पौधे हों या पशु पक्षी, झोंपड़े हों या अट्टालिकाएं, नगर हों या जंगल हो, पहाड़ हों या खाईयाँ हो, सागर हो या मरुस्थल हो-सब परिवर्तनरूपी सरिता में बहे जा रहे हैं। जहाँ नगर थे वहाँ वीरान हो गए, जहाँ बस्तियाँ थी वहाँ आज उल्लू बोल रहे हैं, और जहाँ उल्लू बोल रहे थे वहाँ

बस्तियाँ खड़ी हैं, जहाँ मरुस्थल थे वहाँ आज महासागर हिलोरे ले रहे हैं और जहाँ महासागर थे वहाँ मरुस्थल खड़े हैं। बड़े बड़े खड्डों की जगह पहाड़ खड़े हो गए और जहाँ पहाड़ थे वहाँ आज घाटियाँ, खाइयाँ बनी हुई हैं। जहाँ बड़े बड़े वन थे वह भूमि बंजर और पथरीली हो गई और जो बंजर थी-पथरीली थी वहाँ आज वन और बाग-बगीचों के रूप में हरियाली फैली हुई है।

चांद सफर में, सितारे सफर में,
हवाएं सफर में, दरिया के किनारे सफर में,
अरे शायर! जहाँ की हर चीज सफर में,
....तो आप बेसफर कैसे रह सकते हैं?

आप जिस शरीर को 'मैं' मानते हो वह शरीर भी परिवर्तन की धारा में बह रहा है। प्रतिदिन शरीर के पुराने कोष नष्ट हो रहे हैं और उनकी जगह नये कोष बनने जा रहे हैं। सात वर्ष में तो पूरा शरीर ही बदल जाता है ऐसा वैज्ञानिक भी कहते हैं। इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग होता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर देह रूपी वस्त्र बदलता है जिसको लोग मौत कहते हैं और शोक में फूट फूट कर रोते हैं।

भगवान राम ने बाली का जब वध किया तो बाली की पत्नी राम के पास आई और अपने पति के वियोग में फूट फूट कर रोने लगी। राम ने उसको धीरज बंधाते हुए कहा :

क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा ।
सो तनु तव आगे सोहा, जीव नित्य तू कहाँ लगि रोवा ॥

"हे तारा ! तू किसके लिये विलाप कर रही है ? शरीर के लिये या जीव के लिये ? पंच महाभूतों द्वारा रचित शरीर के लिये यदि तू रोती है तो यह तुम्हारे सामने ही पड़ा है और यदि जीव के लिये रोती है तो जीव नित्य हैं, वह मरता नहीं ।"

यदि वास्तव में मौत होती तो हजारों हजारों बार होनेवाली तुम्हारी मौत के साथ तुम भी मर चुके होते, आज तुम इस शरीर में नहीं होते । यह शरीर तो मात्र वस्त्र है और आज तक आपने हजारों वस्त्र बदले हैं । अपना ईश्वर कंगाल नहीं हैं, दिवालिया नहीं है कि जिसके पास दो चार ही वस्त्र हो । उसके पास तो अपने बालकों के लिये चौरासी चौरासी लाख वस्त्र हैं । कभी चूहे का तो कभी बिल्ली का, कभी कुत्ते का तो कभी हाथी का, कभी पक्षी का तो कभी कछुए का, कभी मकोड़े का तो कभी मनुष्य का – न जाने कितने कितने वेश आज तक हम बदलते आए हैं । वस्त्र बदलने में भय कैसा ?

यही बात भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को कही है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(गीता २-२२)

"हे अर्जुन ! तू यदि शरीरों के वियोग का शोक करता है तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है ।"

बालक की चड्डी (नेकर) फटने पर उसकी माँ उसको निकालकर नई पहनाती है तो बालक रोता है, चिल्लाता है । वही बालक बड़ा होता है, पहले की उसकी चड्डियाँ छोटी पड़ जाती हैं, उन्हें छोड़ता है, बड़ी पहनता है, फिर वह भी छोड़कर पेन्ट या धोती पहनता है । ऐसे ही परमात्मा की संतान भी ज्यों ज्यों बड़ी होती है विकसित होती है त्यों त्यों उसे पहले से अधिक योग्य शरीर मिलते हैं । पहले तुच्छ योनियों के शरीर कीड़ी, मच्छर, कछुए, शेर, हाथी आदि और फिर अंत में मानव शरीर मिलता है । तो इस वस्त्र परिवर्तन से भय कैसा ? वस्त्र बदलनेवाला तो कभी भी मरता नहीं, वह अमर है और परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है, तो फिर मौत है ही कहाँ ? यही बात समझाते हुए गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं अर्जुन को कि तुम्हें भय किस बात का है ?

'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

"यदि युद्ध में शरीर छूट गया तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे और यदि जीत गए तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे ।"

(सभी श्रोतागण तन्मयता से जीवन-मृत्यु पर मीमांसा सुन रहे हैं। स्वामीजी कुछ क्षण रुककर सभी पर एक रहस्यमय दृष्टि फेंकते हैं। वातावरण में थोड़ी गंभीरता छाई हुई जानकर प्रश्न करते हैं :)

आप लोग उदास तो नहीं हो रहे न? आपको मौत का भय तो नहीं लग रहा न? अभी केवल जीवन और मृत्यु पर बात ही चल रही है, किसी की मौत नहीं आ रही है...।

(यह सुनकर सभी खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। वातावरण थोड़ा हल्का हो जाता है। श्रोतागण फिर सम्हल कर बैठ जाते हैं।)

स्वामीजी (फकीरी मस्ती में)–

अरे, मौत तो इतनी प्यारी है कि उसे यदि आमंत्रित किया जाय तो आनन्दमय जीवन के द्वार खोल देती है।

एक जवान साधु था। घूमते घूमते वह नेपाल के एक पहाड़ की तलहटी में जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा, एक वृद्ध फकीर एक शिला पर बैठे हैं। शाम का समय है। सूरज छिपने की तैयारी में है। उन फकीर ने उस जवान साधु को देखा तो बोले–

"मेरे पैरों में इतनी ताकत नहीं है कि अभी मैं उपर पहाड़ पर चढ़कर अपनी गुफा तक पहुँच सकूँ। बेटा, तुम मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर गुफा तक पहुँचा दो।"

युवा साधु भी अलमस्त था। उसने फकीर को अपने

कंधे पर बिठा लिये और चल पड़ा उनकी गुफा की तरफ। चढ़ाई बड़ी कठिन थी, परन्तु वह भी जवान था। चढ़ाई चढता रहा। काफी उपर चढ़ चुकने पर उसने फकीर से पूछा–

"गुफा अभी कितनी दूर है?"

"बस, अब थोड़ी ही दूर है।" फकीर ने जवाब दिया।

चलते चलते काफी समय हो गया। साधु पूछता रहा और वे फकीर कहते रहे–'बस, अब थोड़ी ही दूर है।' मामा का घर कितना दूर? दिया दिखे उतना दूर-ऐसा करते रात को ग्यारह बजे करीब गुफा पर पहुँचे। साधु ने वृद्ध फकीर को कंधे से नीचे उतारे और बोला–

"और कोई सेवा?"

फकीर उसकी सेवा से बड़े प्रसन्न थे। बोले–

"बेटा! तुमने बड़ी अच्छी सेवा की है। बोल, अब तुमको क्या चाहिये?....वह देखो, सामने तीन चार भरे हुए बोरे रखे हैं। उसमें से जितना उठा सको उतना ले जाओ।"

युवा साधु ने जाकर बोरों को छूकर देखा, अनुमान लगाया-शायद रद्दी कागजों से भरे हुए हैं। फिर ध्यान से देखा तो अनुमान गलत निकला। वे बोरे नेपाली नोटों से भरे हुए थे। उसने अनमने मन से उनको देखा और उल्टे पैरों लौट पड़ा फकीर की ओर। फकीर ने पूछा–

"क्यों, माल पसन्द नहीं आया?"

वृद्ध फकीर पहुँचे हुए योगी थे। अपने योगबल द्वारा दृष्टि मात्र से उन्होंने नोटो के बंडलों से भरे बोरे उत्पन्न कर दिये थे। उनको ऐसी आशा थी कि वह युवा साधु अपनी सेवा के बदले इस पुरस्कार से खुश हो जायगा। परंतु वह साधु बोला–

"ऐसी सब चीजें तो मैं पहले ही छोड़ आया हूँ। ये मेरे क्या काम आएगी? इनसे क्या मिलेगा? इनसे क्या जीवन की रक्षा होगी? इनसे क्या जीवन का रहस्य समझ में आएगा? इनसे क्या मौत जानी जा सकेगी?....क्या मैं इन्हीं चीजों के लिये घर बार छोड़कर दर दर भटक रहा हूँ? जंगलों और पहाड़ों को छान रहा हूँ? ये सब तो नश्वर हैं।.... और अगर फकीरों के पास भी नश्वर मिलेगा तो फिर शाश्वत कहाँ से मिलेगा?"

नचिकेता भी यमराज के सम्मुख ऐसी ही मांग पेश करता है। कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा आती है। नचिकेता कहता है यमराज से, 'हे यमराज! कोई कहता है मृत्यु के बाद मनुष्य रहता है और कोई कहता है नहीं रहता है। इसमें बहुत संदेह है। इसलिये मुझे मृत्यु का रहस्य समझाओ ताकि सत्य क्या है, यह मैं जान सकूं।' परन्तु यमराज नचिकेता की जिज्ञासा को परखने के लिये पहले भौतिक भोग और वैभव का लोभ देते हुए कहते हैं–

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥

"हे नचिकेता! तू सौ वर्ष की आयुष्य वाले पुत्र पौत्र, बहुत से पशु, हाथी–घोड़े, सोना मांग ले, पृथ्वी का विशाल राज्य मांग ले, तथा स्वयं भी जितने वर्ष इच्छा हो जीवित रह।"

इतना ही नहीं यमराज आगे कहते हैं–

"मनुष्यलोक में जो भोग दुर्लभ हैं उन सबको स्वच्छन्दतापूर्वक तुम मांग लो। यहाँ जो रथ और बाजों सहित सुन्दर रमणियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिये दुर्लभ हैं। ऐसी कामिनियों को तुम ले जाओ। इनसे अपनी सेवा कराओ, परन्तु हे नचिकेता! तू मरणसम्बंधी प्रश्न मत पूछ।"

फिर भी नचिकेता इन प्रलोभनों में नहीं फँसता और कहता है–"ये सब भोग सदैव रहनेवाले नहीं हैं और इनको भोगने से तेज, बल और आयुष्य क्षीण होते हैं। मुझे ये भोग नहीं चाहिये। मुझे तो मृत्यु का रहस्य समझाओ।"

ठीक इसी प्रकार वह युवा साधु उन वृद्ध फकीर से कहता है–"मुझे ये नोटों के बण्डल नहीं चाहिये। आप यदि मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे मौत दीजिये। मैं जानना चाहता हूँ कि मौत क्या है? मैंने सुना है कि सच्चे फकीर मरना सिखाते हैं। मैं उस मौत का अनुभव करना चाहता हूँ।"

वस्तुतः फकीर मरना सिखाते हैं इसीलिये तो लोग रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिये कहते हैं–'रो मत, चुप हो जा।

२

नहीं तो वो देख, बाबा आया है न, वह पकड़कर ले जाएगा।' भले ही लोग अज्ञानवश बाबाओं अथवा फकीरों से बच्चों को डराते हुए कहते हैं कि वे ले जाएंगे, परन्तु जिनको सच्चे फकीर ले जाते हैं अथवा जो उनका हाथ पकड़ लेते हैं, वे तर जाते हैं। सच्चे फकीर उनको सब भयों से मुक्त कर देते हैं, और उनको ऐसे पद पर बिठा देते हैं कि जिसके आगे संसार के सारे भोग-वैभव, धन-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र, यश-प्रतिष्ठा, सब तुच्छ भासित होते हैं।

परन्तु ऐसे सच्चे फकीर मिलने दुर्लभ हैं और दृढ़ता से उनका हाथ पकड़नेवाले भी दुर्लभ हैं। जिन्होंने ऐसे फकीरों का हाथ पकड़ा है वे निहाल हो गए।

उस युवा साधु ने भी ऐसे ही फकीर का हाथ पकड़ा था। मौत को जानने की उसकी प्रबल जिज्ञासा को देखकर वह वृद्ध फकीर बोल उठे-'अरे यह क्या मांगता है? यह भी कोई मांगने की चीज है?' ऐसा कहकर उन्होंने युवा साधु को थोड़ी देर इधर उधर की बातों में लगाया और मौका देखकर उसको एक तमाचा मार दिया। युवक की आँखों के सामने जैसे बिजली चमक उठी हो ऐसा अनुभव हुआ और दूसरे क्षण उसका स्थूल शरीर भूमि पर लेट गया। उसका सूक्ष्म शरीर देह से अलग होकर लोक-लोकान्तर की यात्रा में निकल पड़ा। लोग जिसको मृत्यु कहते हैं-ऐसी घटना घट गई।

प्रातःकाल हुआ। रात भर आनन्दमय मृत्यु के

स्वाद में डूबे हुए उस युवा साधु के स्थूल शरीर को हिलाकर वृद्ध फकीर ने कहा :

"बेटा उठ! सुबह हो गई है। ऐसे कब तक सोता रहेगा?"

युवा साधु आँख मलता हुआ प्रसन्नवदन उठ बैठा। जिसको मृत्यु कहते हैं उस मृत्यु को उसने देख लिया। अहा! कैसा अद्भुत अनुभव! उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा। वह उठकर फकीर के चरणों में गिर पड़ा।

लोग कहते हैं कि मरना दुःखप्रद है और इसीलिये वे मौत से डरते हैं। क्योंकि उनका संसार में मोह है। उनके लिये मौत भयप्रद है, परन्तु फकीरों के लिये ऐसा नहीं है।

मौत तो एक पड़ाव है, एक विश्रांति-स्थान है। उससे भय कैसा? यह तो प्रकृति की एक व्यवस्था है। यह एक स्थलान्तरण मात्र है। उदाहरणार्थ, जैसे मैं अभी यहाँ हूँ। यहाँ से आबू चला जाऊँ तो यहाँ मेरा अभाव हो गया, परन्तु आबू में मेरी उपस्थिति हो गई। आबू से हिमालय चला जाऊँ तो आबू में मेरा अभाव हो जायेगा और हिमालय में मेरी हाजिरी हो जायगी। इस प्रकार मैं तो ˝ ही, मात्र स्थान का परिवर्तन हुआ।

तुम्हारी अवस्थाएं बदलती हैं, तुम नहीं। पहले तुम सूक्ष्म रूप में थे। फिर बालक का रूप धारण किया। बाल्यावस्था छूट गई तो किशोर बन गए। किशोरावस्था

छूट गई तो जवान बन गए । जवानी गई तो वृद्धावस्था आ गई । तुम नहीं बदले, परन्तु तुम्हारी अवस्थाएं बदलती गई ।

हमारी भूल यह है कि अवस्थाएं बदलने को हम अपना बदलना मान लेते हैं । वस्तुतः न तो हम जन्मते-मरते और न ही हम बालक, किशोर, युवा और वृद्ध बनते । ये सब हमारी देह के धर्म हैं और हम देह नहीं हैं । फकीरों का यह अनुभव है कि :

मुझ में न तीनों देह हैं, तीनों अवस्थाएं नहीं ।
मुझ में नहीं बालकपना, यौवन बुढ़ापा है नहीं ।।
जन्मूँ नहीं मरता नहीं, होता नहीं मैं बेश-कम ।
मैं ब्रह्म हूँ मैं ब्रह्म हूँ, तिहुँ काल मैं हूँ एक सम ।।

मृत्यु नवीनता को जन्म देने में एक संधिस्थान है । यह एक विश्राम-स्थल है । जिस प्रकार दिन भर के परिश्रम से थका मनुष्य रात्रि को मीठी नींद लेकर दूसरे दिन प्रातः नवीन स्फूर्ति लेकर जागता है उसी प्रकार यह जीव अपना जीर्ण-शीर्ण स्थूल शरीर छोड़कर आगे की यात्रा के लिये नया शरीर धारण करता है । पुराने शरीर के साथ लगे हुऐ टी. बी., दमा, केन्सर जैसे भयंकर रोग, चिन्ताएं, ऋण (कर्जा) आदि भी शरीर छूटने के साथ ही साथ छूट जाते हैं । दिन के भारी श्रम से थका हुआ मनुष्य जैसे नींद की चाहना करता है उसी प्रकार

समझदार व्यक्ति मृत्यु से भय न खाकर उसे समझपूर्वक आमंत्रित करता है ।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग, जिसको मृत्यु कहा जाता है, वह विश्राम-स्थल तो है, परन्तु पूर्ण विश्रांति उसमें भी नहीं है । यह फकीरी मौत नहीं है ।

फकीरी मौत तो वह है जिसमें सारी वासनाएं जड़ सहित भस्म हो जाएं ।

भीतर यदि सूक्ष्म वासना भी बची रही तो जीव फिर से नया शरीर धारण कर लेगा और फिर से सुख दुःख की ठोकरें खाना चालू कर देगा । फिर से वही :

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।

कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन सहित जब सारे पुत्र मर गए तो धृतराष्ट्र खूब दुःखी हुए और विदुर से कहने लगे :

"कृष्ण और पाण्डवों ने मिलकर मेरे सब पुत्रों का संहार कर दिया है इसका दुःख मेरे से सहन नहीं होता । एक एक क्षण व्यतीत करना मुझे वर्ष जितना लम्बा लग रहा है ।"

विदुर धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं :

"जो होना होता है वह होकर ही रहता है । आप व्यर्थ में शोक न करो । आत्मा अमर है । उसके लिये मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है । इस शरीर को छोड़कर जो जाता है वह वापस नहीं आता है, इस बात को

समझकर–'राम राखे तेम रहिये।' हे भाई ! शोक न करो।"

परन्तु धृतराष्ट्र का शोक कम नहीं हुआ। वह दृढ़तापूर्वक कहने लगा :

"तुम कहते हो वह सब समझता हूँ, फिर भी मेरा दुःख कम नहीं होता। मुझे मेरे पुत्रों के बिना चैन नहीं पड़ रहा है। पल भर को भी चित्त शांत नहीं रहता।"

अज्ञानी सोचता है कि जिस प्रकार मैं चाहता हूँ उसी प्रकार सब हो जाय तो मुझे सुख हो। यही मनुष्य का अज्ञान है।

शास्त्र और संतों का कितना ही उपदेश सुनने को मिल जाय तो भी वह अपनी मान्यताओं का मोह सरलता से छोड़ने को तैयार नहीं होता। विदुर का धर्मयुक्त उपदेश धृतराष्ट्र को सान्त्वना नहीं दे सका। धृतराष्ट्र शास्त्रों से बिल्कुल अनभिज्ञ था ऐसी बात नहीं थी। फिर भी उसका शास्त्रज्ञान उसे पुत्रों के मोह से मुक्त नहीं कर सका।

हरिद्वार में एक महान सन्त रहते हैं। बहुत सीधे-सादे और सरल हैं। कमर में कंतान (टाट) लपेटे रहते हैं। ऊपर से दिखने में भिखारी जैसे लगते हैं, मगर भीतर से सम्राट हैं। उनके पास एक व्यक्ति आया और बोला :

"महाराज, मुझे शांति चाहिये...।"

महाराज ने पहले उसे ध्यान से देखा फिर कहा :

"शान्ति चाहिये तो तुम गीता पढ़ो।"

यह सुनकर वह चौंककर बोला :

'गीता !...गीता तो मैं विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ। मैं कालेज में प्रोफेसर हूँ। गीता मेरा विषय है। गीता मैं कई बार पढ़ चुका हूँ। उस पर तो मेरा काबू है।"

महाराज बोले :

"यह ठीक है। अब तक तो लोगों को पढ़ाकर पैसों के लाभ के लिये गीता पढ़ी होगी। अब शांति-लाभ के लिये पढ़ो।"

लोग शास्त्रों में से सूचनाएं और जानकारियाँ इकट्ठी करके उसे ही ज्ञान मान लेते हैं। दूसरों पर अपनी छाप डालने के लिये लोग शास्त्रों की बातें कहते हैं, उपदेश देते हैं, परन्तु स्वयं को कोई अनुभूति होती नहीं। मृत्यु के विषय में भी लोग विद्वत्तापूर्ण प्रवचन करते हैं, मृत्यु से डरनेवालों को आश्वासन और धैर्य दे सकते हैं, परन्तु मौत जब उन्हीं के सम्मुख साक्षात् आकर खड़ी होती है तो उनकी रग-रग काँप उठती है, क्योंकि उनको फकीरी मौत का कोई अनुभव नहीं होता।

कई लोग कहते हैं कि जीवन और मौत अपने हाथ में नहीं हैं, परन्तु यह उनके लिये ठीक है जिनको आध्यात्मिक रहस्य का पता नहीं, जो स्वयं को शरीर मानते हैं, दीन हीन मानते हैं। परन्तु फकीर जानते हैं कि जीवन और मृत्यु इन दोनों पर मनुष्य का अधिकार है। यह अधिकार प्राप्त करने की तरकीब भी वे जानते

हैं । कोई हिम्मतवान् जानने को तत्पर हो तो वे उसे बता भी सकते हैं । वे तो खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि यदि रोते कलपते हुए मरना हो तो खूब भोग भोगो । किसी की परवाह न करते हुए खूब खाओ, पीओ और अमर्यादित विषय-सेवन करो । ऐसा जीवन आपको अपने आप मौत की तरफ शीघ्रता से आगे बढ़ा देगा । परन्तु....

यदि मौत पर विजय प्राप्त करनी हो, जीवन को सही तरीके से जीना हो तो फकीरों के कहे अनुसार आसन करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो, योग करो, आत्मचिंतन करो और ऐसा पद प्राप्त कर लो कि जहाँ मृत्यु की पहुँच नहीं है ।

यह कोई कपोल-कल्पित बातें नहीं हैं । आज भी ऐसे कई योगी हैं जो साधना द्वारा अपनी उम्र बढ़ाकर जीवन जी रहे हैं । एक आध ऐसा कोई योगी डाक्टरों के सामने आकर हृदय की गति बन्द करके बता देता है तो वह बात भी लोगों को बड़ी आश्चर्यजनक लगती है । लोगों के टोले के टोले उसको देखने के लिये उमड़ पड़ते हैं । परन्तु यह भी कोई योग की पराकाष्ठा नहीं है ।

इतिहास में ज्ञानेश्वर महाराज और योगी चांगदेव का प्रसंग आता है, वह तो आप लोग जानते ही होंगे ।

चांगदेव ने मृत्यु को चौदह बार धोखा दिया था । अर्थात् जब जब मौत का समय आता तब तब चांगदेव योग की कला से अपने प्राण ऊपर चढ़ाकर मौत टाल दिया करते थे । ऐसा करते करते चांगदेव ने अपनी उम्र १४०० वर्ष तक बढ़ा दी, फिर भी उनको आत्मशांति नहीं मिली । फकीरी मौत ही आत्मशांति दे सकती है और इसीलिये चांगदेव को आखिर में ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में आना ही पड़ा । ज्ञानेश्वर महाराज योगी भी थे और ज्ञानी भी । वे फकीरी मौत को भली भाँति जानते थे ।

फकीरी मौत क्या है ?

फकीरी मौत ही असली जीवन है । फकीरी मौत अर्थात् स्वयं के अहं की मृत्यु । स्वयं के जीवभाव की मृत्यु । 'मैं देह हूँ, 'मैं जीव हूँ'–इस परिच्छिन्न भाव की मृत्यु । स्वयं की सूक्ष्म वासनाओं की मृत्यु ।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग-यह कोई फकीरी मौत नहीं है । अगर वासना शेष हो तो सूक्ष्म शरीर बार बार स्थूल शरीर धारण करके इस संसार में जन्म मरण के दुःखपूर्ण चक्कर में भटकता रहता है ।

जब तक फकीरी मौत नहीं हो तब तक चांगदेव की तरह चौदह बार क्या चौदह हजार बार भी स्थूल शरीर को बचाये रखा जाय तो भी परम शांति नहीं मिलती । इसी कारण चांगदेव को फकीरी मौत सीखने

के लिये ज्ञानेश्वर महाराज के पास आना पड़ा था। १४०० वर्ष का शिष्य और २२ वर्ष का गुरु। यही भारतीय संस्कृति है। ज्ञान से उम्र का कोई सम्बंध ही नहीं।

हम तो जीवन में पग पग पर छोटी-मोटी परिस्थितियों से घबरा उठते हैं। ऐसा भयभीत जीवन भी कोई जीवन है? यह तो मौत से भी बदतर है। इसीलिये कहता हूँ कि असली जीवन जीना हो–निर्भय जीवन जीना हो तो फकीरी मौत को एक बार जान लो।

फकीरी मौत अर्थात् अपने अमरत्व को जान लेना। फकीरी मौत अर्थात् उस पद पर आरूढ हो जाना जहाँ से जीवन भी देखा जा सके और मौत भी देखी जा सके। जहाँ से यह स्पष्ट रूप से दिखे कि सुख-दुःख आए और गए, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आई और गई, परन्तु ये सब शरीर से ही सम्बंधित थे, मुझे तो वे स्पर्श तक नहीं कर सके। मैं तो असंग हूँ, अमर हूँ। मेरा तो जन्म भी नहीं मृत्यु भी नहीं।

सुकरात को जब जहर दिया जाने लगा तो उसके शिष्य रोने लगे। क्योंकि उनको यह अज्ञान था कि सुकरात अब बचेगा नहीं, मर जाएगा। सुकरात ने कहा:

'अरे, तुम रोते क्यों हो? अब तक मैंने जीवन देखा, अब मौत को देखूँगा। यदि मैं मर जाऊँगा तो आज नहीं तो कल मरने ही वाला था, इसलिये रोने की क्या जरूरत है? और यदि मरते हुए भी नहीं मरा–केवल शरीर ही छिन्न भिन्न हुआ तो भी रोने की क्या जरूरत?"

सुकरात ने बिना हिचकिचाहट के, राजी–खुशी से जहर का प्याला पी लिया और शिष्यों से कहा:

"देखो, यह रोने का समय नहीं है। बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात समझने का समय आया है। मेरे शरीर पर जहर का प्रभाव होने लगा है। पैर सुन्न होते जा रहे हैं। घुटनों तक जड़ता व्याप्त हो गई है। जहर का असर बढ़ता जा रहा है। मेरे पैर हैं कि नहीं इसकी अनुभूति नहीं हो रही है।....अब कमर तक का भाग संवेदनहीन बन गया है।"

इस प्रकार धीरे धीरे सुकरात का सारा शरीर ठंडा होने लगा। सुकरात ने कहा:

"अब जहर के प्रभाव से हाथ, पैर, छाती जड़ हो गई है। थोड़ी ही देर में मेरी जिह्वा भी निस्पंद हो जाएगी। उससे पहले एक महत्त्वपूर्ण बात सुन लो। शरीर के सब अंग एक के बाद एक निस्पंद होते जा रहे हैं, परन्तु उससे मुझमें कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। मैं इतना ही पूर्ण हूँ जितना पहले था। शरीर से मैं स्वयं को अलग

असंग मेहसूस कर रहा हूँ । अब तक जैसे जीवन को देखा वैसे ही अभी मौत को भी देख रहा ँ । यह मौत मेरी नहीं बल्कि शरीर की है ।"

सुकरात तो शरीर छोड़ते छोड़ते स्वयं का अनुभव जगत को कहते गए कि शरीर की मृत्यु यह तुम्हारी मृत्यु नहीं, शरीर जाते हुए तुम इतने के इतने पूर्ण हो, परन्तु भारत के ऋषि तो अनादि काल से कहते आये हैं :

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ।
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति ।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

— श्वेताश्वतरोपनिषद

'हे अमृतपुत्रो ! सुनो । उस महान् परमपुरुषोत्तम को मैं जानता हूँ । वह अविद्यारूप अन्धकार से सर्वथा अतीत है । वह सूर्य की तरह स्वयं प्रकाशस्वरूप है । उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में, जन्म-मृत्यु के बन्धनों से सदैव के लिये छूटने में समर्थ होता है । परम पद की प्राप्ति के लिये इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

यह कोई वेद-उपनिषद काल की बात है, उस समय के ऋषि चले गए और अब नहीं हैं-ऐसी बात नहीं ।

आज भी ऐसे ऋषि और ऐसे फकीर हैं जिन्होंने सत्य की अनुभूति की है । स्वयं के अमरत्व का अनुभव किया है । इतना ही नहीं बल्कि दूसरों को भी इस अनुभव में उतार सकते हैं । रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि रमण इत्यादि ऐसे ही तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे । और आज भी ऐसे महापुरुष जंगलों में और समाज के बीच भी हैं । यहाँ-इस स्थान पर भी हो सकते हैं । परन्तु उनको देखने की आँख चाहिये । इन चर्मचक्षुओं से उन्हें पहचानना मुश्किल है । फिर भी जिज्ञासु और मुमुक्षु वृत्ति के लोग कृपा से उनके बारे में थोड़ा संकेत या इशारा पा सकते हैं ।

ऐसे फकीरों के पास तीन प्रकार के लोग आते हैं : (१) दर्शक (२) विद्यार्थी और (३) साधक ।

दर्शक अर्थात् ऐसे लोग जो केवल दर्शन करने और यह देखने के लिये आते हैं कि सन्त कैसे हैं, क्या करते हैं, क्या कहते हैं । उपदेश भी सुन तो लेते हैं पर उसके अनुसार कुछ करना है इसके साथ उनका कोई सम्बंध नहीं होता । आगे बढ़ने के लिये उनमें कोई उत्साह नहीं होता ।

विद्यार्थी अर्थात् वे जो शास्त्र एवं उपदेश सम्बंधी अपनी जानकारी बढ़ाने के लिये आते हैं । अपने पास जो जानकारी है उसमें और वृद्धि होवे ताकि दूसरों को यह सब सुनाकर अपनी विद्वत्ता की छाप उनपर छोड़ी जा

सके । दूसरों से सुना, याद रखा और जाकर दूसरों को सुना दिया । जैसे 'गुड्स ट्रान्सपोर्ट कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड'–यहाँ का माल वहाँ और वहाँ का माल यहाँ, लाना और ले जाना ।

ऐसे लोग भी तत्त्व को समझने के मार्ग पर चलने का परिश्रम उठाने को तैयार नहीं ।

तीसरे प्रकार के लोग होते हैं **साधक**। ये ऐसे लोग होते हैं कि जो साधनामार्ग पर चलने को तैयार होते हैं। इनको जैसा बताया जाता है वैसा करने को पूर्णरूप से कटिबद्ध होते हैं । स्वयं की सारी शक्ति उसमें लगाने को तत्पर होते हैं । उसके लिये अपना मान-सन्मान, तन-मन-धन, सब कुछ होम देने को तैयार होते हैं । सन्त के प्रति और अपने ध्येय के प्रति इनमें पूर्ण निष्ठा होती है । ये लोग फकीर अथवा सन्त के संकेत अनुसार लक्ष्य की सिद्धि के लिये साहसपूर्वक चल पड़ते हैं ।

विद्यार्थी अपने व्यक्तित्व का शृंगार करने के लिए आते हैं जबकि साधक व्यक्तित्व का विसर्जन करने के लिये आते हैं। साधक अपने लक्ष्य की तुलना में अपने व्यक्तित्व या अपने अहं का कोई भी मूल्य नहीं समझते । जबकि विद्यार्थी के लिये अपना अहं और व्यक्तित्व का शृंगार ही सब कुछ है । अपनी विद्वता में वृद्धि, जानकारी को बढ़ाना, व्यक्तित्व को और आकर्षक बनाना इसी में उसे सार दिखता है । तत्त्वानुभूति की तरफ उसका कोई ध्यान नहीं होता ।

यही कारण है कि फकीरों के पास आते तो बहुत लोग हैं, परन्तु साधक बन कर वहीं टिककर तत्त्व का साक्षात्कार करनेवाले कुछ विरले ही होते हैं ।

जिसने फकीरी मौत को जान लिया अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हो गया हो वह भले शरीर की दृष्टि से कम उम्र का हो, परन्तु उसके आगे लौकिक विद्या में प्रवीण और अधिक वय के सफेद दाढ़ीमूँछवाले लोग भी बालक समान होते हैं । इसीलिये योगविद्या में प्रवीण १४०० वर्ष के चांगदेव को कम उम्रवाले ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में झुकना पड़ा था । प्राचीन काल में ऐसे कई उदाहरण देखने में आते हैं कि जिसमें गुरु तो जवान हैं और शिष्य वृद्ध ।

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः ॥

अर्थात् यह कैसा वैचित्र्य है कि वटवृक्ष के नीचे युवा गुरु और वृद्ध शिष्य बैठे हैं ! गुरु द्वारा मौन व्याख्यान हो रहा है और शिष्यों के सब संशयों और शंकाओं का समाधान होता जा रहा है ।

अपने मोटेरा आश्रम (सन्त श्री आशाराम आश्रम) में भी ऐसे ही करीब साठेक वर्ष के सफेद बालवाले एक साधक हैं । पहले डीसा में वे एक फकीर के पास गए । गए तो थे वे दर्शक बनकर ही, परन्तु फकीर की

दृष्टि पड़ते ही वे दर्शक में से साधक बन गए। करीब ५ वर्ष पूर्व डीसा के आश्रम में था तब वे मेरे पास आए थे। इस पकी हुई उम्र में भी वे १८ वर्ष की एक बाला के साथ ब्याह रचाने की तैयारी में थे। और आशीर्वाद मांगने हेतु वहाँ आए थे। उनको देखकर ही मेरे मुंह से निकल पड़ा—

'अब तुम्हारी शादी ईश्वर के साथ कराएंगे।'

यह सुनकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि न तो वे मुझे पहले से जानते थे और न ही मैं उन्हें जानता था। उस वक्त उनका शरीर भी कैसा था! चरबी और कफ-पित्त से ठसाठस भरा हुआ एकदम स्थूल, दमा आदि रोगों का शिकार। डीसा में कपड़े के बड़े व्यापारी थे। धूप में बिना छाता लिये दुकान से नीचे नहीं उतर पाते थे। प्रकृति ऐसी थी कि किसी भी सन्त महात्मा को नहीं गांठे और काम वासना भीतर इतनी भरी हुई थी कि आगे की दो पत्नियाँ शरीर छोड़ चुकी थी फिर भी इस उम्र में तीसरी शादी करने को तैयार थे। पत्नी बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे।

घर पहुँचने पर उनको पता चला कि उनके अन्दर जो काम विकार का उफान आया हुआ था वह एकदम शांत हो गया है। भविष्य में पत्नी बननेवाली उस कुमारी के साथ एकांत में अनेक चेष्टाएं करके भी वे उस काम विकार को पुनः जगा नहीं सके। इतना प्रबल विकार एकाएक कहाँ चला गया! फिर उनको

समझ में आया कि फकीर की ईश्वरीय अहैतुकी कृपा उनमें उतरी है। उनको सारा संसार सूना सूना लगने लगा। उन्होंने तुरन्त ही उस कुमारी युवती को कुछ रुपये और कपड़े दिये और बेटी कहकर रवाना कर दिया। उसके बाद उन्होंने आसन, प्राणायाम, गजकरणी, नेति, धोति आदि क्रियाएं सीख ली और नियमित रूप से करने लगे। इससे उनके शरीर के सारे पुराने रोग कफ-पित्त-दमा आदि दूर हो गए और शरीर में से आवश्यकता से अधिक चर्बी घटकर शरीर हल्का फूल जैसा हो गया। अब तो वे जवानों के साथ दौड़ने में स्पर्धा करते हैं। ध्यानयोग की साधना में उन्होंने इतनी प्रगति की है कि उनको कई प्रकार के अलौकिक अनुभव हुआ करते हैं। अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा वे लोक-लोकान्तर में घूम आया करते हैं।

यह भी साधना की कोई आखिरी भूमिका नहीं है। सर्वोच्च शिखर नहीं है। यह भी सब माया की सीमा में ही है। फिर चर्म-चक्षुओं से देखो अथवा ध्यान में बैठकर देखो, क्योंकि :

यद् दृश्यं तद् अनित्यम्।

जो दिखता है वह अनित्य है। 'जो दिखे सो चालणहार।' चांगदेव भी योग में कुशल थे। काल को कई बार धोखा दे चुके थे, परन्तु माया को धोखा न दे सके। वे भी सात्त्विक माया में थे। माया से परे नहीं थे।

माया ऐसी ठगिनी ठगत फिरत सब देश ।
जो ठग या ठगिनी ठगे वा ठग को आदेश ॥

कोई विरले संत ही इस माया को ठग सकते हैं, माया से पार जा पहुँचते हैं, बाकी के लोगों को तो यह माया नश्वर में ही शाश्वत का आभास करा देती है, अस्थिरता में स्थिरता दिखा देती है । ऐसी मोहिनी माया के विषय में श्रीकृष्ण कहते हैं :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
(गीता ७।१४)

मेरी यह अद्भुत त्रिगुणमयी माया तरनी अत्यन्त दुष्कर है, परन्तु जो मेरी शरण आते हैं वे तर जाते हैं ।

ऐसी दुस्तर माया को जो संत अथवा फकीर तर जाते हैं और मौत की पोल को जान जाते हैं, वे कहते हैं :

"एक ऐसी जगह है जहाँ मौत की पहुँच नहीं, जहाँ मौत का कोई भय नहीं, जिससे मौत भी भयभीत होती है–उस जगह हम बैठे हैं । तुम चाहो तो तुम भी बैठ सकते हो ।

फकीर कहते हैं कि तुम्हारे में एक ऐसा चेतन है जो कभी मरता नहीं । जिसने मौत कभी देखी नहीं । जो जीवन और मौत के आभासमय परिवर्तन को देखता है, परन्तु उन सबसे परे है ।

यदि घड़े में आया हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब घड़े के पानी को उबलता हुआ जानकर यह माने कि मैं उबल रहा हूँ, पानी हिले तो समझे कि मैं हिलता हूँ, घड़ा फूट गया तो समझे कि मैं मर गया तो यह उसका अज्ञान है । परन्तु उसको यह पता चल जाय कि पानी के उबलने से म नहीं उबलता, पानी के हिलने से मैं नहीं हिलता, मैं तो वह चन्द्रमा हूँ जो हजारों घड़ों में चमक रहा हूँ, कितने ही घड़े टूट-फूट गये परन्तु मैं मरा नहीं, मेरा कुछ भी बिगड़ा नहीं । मैं इन सबसे असंग हूँ–तो वह कभी दुःखी नहीं होगा ।

इसी प्रकार हम यदि अपने असंगपने को जान लें अर्थात् 'मैं शरीर-मन-बुद्धि नहीं, अपितु आत्मा हूँ'- यह हम जान लें तो फिर कितने ही देह रूपी घड़े बनें और टूटें-बिखरें, कितनी ही सृष्टियाँ बनें और उनका प्रलय हो जाय, हमको कोई भय नहीं होगा, क्योंकि आत्मा का स्वभाव है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
(गीता २।२३)

आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गीला नहीं कर सकता और हवा सुखा नहीं सकती ।

जिन फकीरों ने यह रहस्य जान लिया है, जो इस

अमृतमय अनुभव में से गुजर चुके हैं, वे सब भयों से मुक्त हो गये हैं। इसीलिये वे अपनी अनुभवसिद्ध वाणी में कहते हैं :

"अपने आत्मदेव से अपरिचित होने के कारण ही तुम अपने को दीन हीन और दुःखी मानते हो। इसलिये अपनी आत्म-महिमा में जाग जाओ। यदि अपने आपको दीन ही मानते रहे तो रोते रहोगे। ऐसा कौन है जो तुम्हें दुःखी कर सके? तुम यदि न चाहो तो दुःख की क्या मजाल है कि तुम्हें स्पर्श भी कर सके! अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड को जो चला रहा है वह चेतन तुम्हारे भीतर चमक रहा है। उसकी अनुभूति कर लो। वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है।"

मन्सूर को सूली पर चढ़ा दिया गया था। परन्तु उनको सूली का कोई भय नहीं था। सूली का कष्ट उनको स्पर्श भी नहीं कर सका, क्योंकि मन्सूर स्वयं की महिमा में जगे हुए थे। वे यह जान चुके थे कि मैं शरीर नहीं हूँ। सूली शरीर को लग सकती है, मुझे नहीं। इसलिये वे हंसते हंसते सूली पर चढ़ गए थे।

हम ही जानबूझकर अपनी प्रसन्नता की, अपने सुख-दुःख की चाबी दूसरों के हाथों में सोंप देते हैं। कोई थोड़ा हंस देता है तो हम क्रोधित हो उठते हैं। कोई थोड़ी प्रशंसा कर देता है तो हर्ष से फूल उठते हैं,

क्योंकि हम अपने को सीमित-परिच्छिन्न शरीर या मन ही मान बैठे हैं।

हम अपने वास्तविक स्वरूप, अपनी असीम महिमा को नहीं जानते। नहीं तो मजाल है कि जगत के सारे लोग और तैंतीस करोड़ देवता भी मिलकर हमें दुःखी करना चाहे और हम दुःखी हो जायें! जब हम ही भीतर से सुख अथवा दुःख को स्वीकृति देते हैं तभी सुख अथवा दुःख हमको प्रभावित करता है। हमेशा प्रसन्न रहना ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि कोई यदि तुम्हारी प्रसन्नता छीनकर उसके बदले स्वर्ग का फरिस्ता भी तुमको बनाना चाहे तो उस फरिश्तापद को ठोकर मार दो, मगर अपनी प्रसन्नता मत बेचो।

इस जीवन और मृत्यु का हम कई बार अनुभव कर चुके हैं। फकीर कहते हैं :

"तुम्हारा न तो जीवन है और न ही मृत्यु। तुम जीव नहीं, तुम शिव हो। तुम अमर हो। तुम अनन्त अनादि सच्चिदानन्द परमात्मा हो।...यदि इस जन्म-मरण के खेल से थक चुके हो, इनके खोखलेपन को जान चुके हो, इसके असारपने से परिचित हो चुके हो तो किसी फकीर का सांनिध्य लाभ लेकर फकीरी मौत को जान लो। फिर तुम्हें कोई दुःख, कोई मृत्यु भयभीत नहीं कर सकेगी।

फिर जिसे आना हो वह आवे, जाना हो वह चला जावे, सुख आवे तो आने दो, दुःख आवे तो आने दो। जो आयगा वह जायगा। तुम द्रष्टा बनकर देखते रहो। तुम अपनी महिमा में मस्त रहो।"

मौत से भी मौत का भय खराब है। मौत आ जाय वह ठीक है, परन्तु सदैव उससे भयभीत रहना यह ठीक नहीं, क्योंकि भय में से ही सारे पाप पैदा होते हैं। भय ही मृत्यु है।

लोग पूछते हैं: "स्वामीजी! आत्म-साक्षात्कार हो जाता है फिर उसके बाद क्या होता है?" होता क्या है? हम अपने स्वरूप में जाग जाते हैं। उसके बाद हमसे जो भी प्रवृत्ति होती है वह आनन्दमय ही होती है। संसार की कोई भी दुःखपूर्ण घटना हमको दुःखी नहीं कर सकती। फिर यह शरीर रहे या न रहे, हमारे आनन्द में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उस आनन्द-स्वरूप अपने आत्मदेव को जानना-यही जीवन का परम कर्तव्य है। परन्तु इस परम कर्तव्य की ओर मनुष्य का ध्यान जाता नहीं और छोटी मोटी तुच्छ प्रवृत्तियों में ही वह अटका रह जाता है।

हम कहीं यात्रा में निकलते हैं तो रास्ते के लिये टिफन भर कर भोजन साथ ले लेते हैं। भोजन से भी अधिक महत्त्व का पानी है, परन्तु उसके लिये सोच लेते हैं कि चलो, स्टेशन पर भर लेंगे। घर से पानी लेकर चलने की चिन्ता नहीं करते। पानी से भी ज्यादा जरूरी

हवा है। उसके बिना तो एक मिनट भी नहीं चलता, फिर भी हवा का कोई सिलेन्डर भर कर साथ नहीं लेते, क्योंकि हम सब जानते हैं कि वह तो सर्वत्र है। इसलिये हवा के लिये हम कोई चिन्ता नहीं करते।

हवा से कम जरूरी पानी के लिये और पानी से कम जरूरी भोजन के लिये हम ज्यादा चिन्ता करते हैं। उसी प्रकार अपने आनन्द-स्वरूप आत्मा में जागने के परम कर्तव्य को छोड़कर कम महत्त्व के स्थूल शरीर के लालन-पालन एवं उससे सम्बंधित व्यवहार को सम्हालने में ही हम लगे रहते हैं। स्थूल शरीर असत्, जड़ और दुःखरूप है। उसको चलानेवाला सूक्ष्म भूतों से निर्मित सूक्ष्म शरीर है। उसको भी चेतन सत्ता देनेवाला सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप आत्मा है। इस आनन्द-स्वरूप आत्मा का असत्-जड़-दुःखरूप और मरणधर्मा समझ कर जीवन भर मौत के भय से भयभीत बने रहते हैं।

अनंत परमात्मा में न तो उत्थान है न पतन, न जन्म है न मरण। वहाँ तो सब एकरस है। हम ही मोहवश अपना संसार खड़ा कर लेते हैं और एक दूसरे के साथ संबंध बनाकर अपने को जानबूझ कर बन्धन में डाल देते हैं।

एक संत के पास एक सज्जन का पत्र आया। उसमें लिखा था कि, 'स्वामीजी, आपके आशीर्वाद से हमारे यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है।' संत ने उत्तर में उसे लिखा कि 'तुम झूठ बोलते हो'। फिर जब वह सज्जन संत के पास

गया तो उसने कहा कि, 'स्वामीजी ! मैं सच कहता हूँ, मेरे यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है । इस पर उन संत ने फिर से कहा कि 'तुम झूठ बोलते हो ।' यह सुन कर उस सज्जन को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह विस्फारित नेत्रों से संत की ओर देखने लगा। तब संत ने कहा :

'पुत्र का जन्म नहीं हुआ, पिता का जन्म हुआ है, माता का जन्म हुआ है, काका-मामा का जन्म हुआ है । पुत्र को तो खबर ही नहीं है कि मेरा जन्म हुआ है और मैं किसी का पुत्र हूँ ।" परन्तु हम उस पर सारे सम्बन्ध आरोपित कर देते हैं । वस्तुतः पंचभूतों में कोई आकार बना है उसे पुत्र का नाम दे दिया । समय आने पर यह आकार बिखर जायगा । यह आकार बने उसमें हर्ष और यह आकार बिखर जायगा उसमें शोक कैसा ? भय कैसा ?

जिस शरीर को हम 'मैं' मानते हैं, उसकी प्रकृति तो देखो ! पिया तो था अमृत जैसा मीठा जल और निकला मूत्र रूप में गंदा पानी । खाये तो थे मोहनथाल, दूधपाक, छप्पन भोग पर बन गया सब विष्टा रूप । शरीर का संग करने से पदार्थ की ऐसी अवस्था बन जाती है । सत्-चित्-आनन्द स्वरूप आत्मा भी अपने को भूलकर शरीर के साथ एक होकर स्वयं को 'मैं शरीर' मान लेती है और दीन-हीन और दुःखी बन जाती है । परन्तु जब वह अपने आपमें जग जाती है तब अपने को देवों का देव अनुभव करती है ।

यदि हमने शरीर के साथ अहंबुद्धि की तो हम में भय व्याप्त हो ही जायगा, क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है । उसका परिवर्तन अवश्यंभावी है । उसको तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं रोक सकते । परन्तु यदि हमने अपने आत्मस्वरूप को जान लिया, स्वरूप में हमारी निष्ठा हो गई तो हम निर्भय हो गए, क्योंकि स्वरूप की मृत्यु होती नहीं । मौत भी उससे तो डरती है ।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती एक बार रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा कर रहे थे । वे यह जान लेना चाहते थे कि तीसरे दर्जे में लोगों द्वारा किये जाने वाले मान-अपमान का प्रभाव उनके दिल पर होता है कि नहीं । आत्मनिरीक्षण से उन्हें पता लगा कि प्रभाव तो होता है । यह बात उन्होंने श्री उडिया बाबा को बताई । उडिया बाबा ने कहा :

"तुम बैठते ही कचरे के ढेर पर हो और आशा करते हो कि मुझ पर कोई कचरा न फैंके, मुझे कचरे की दुर्गन्ध न आवे-यह कैसे हो सकता है ? तुम बैठते हो शरीर में और आशा रखते हो कि मान अपमान का असर न हो....। स्वयं को शरीर माना तो मान-अपमान, सुख-दुःख होगा और जन्म-मृत्यु भी होगी ।"

वेदान्त के रहस्य को समझना यह कोई स्त्रियों का काम नहीं है । स्त्री अर्थात् प्रकृति के शरीर को 'मैं' मान कर जीनेवाला ।

एक बार राजा जनक विद्वानों की सभा भर के बैठे थे । उस सभा में गार्गी आई । वह बिल्कुल दिगम्बर (नग्न) थी । गार्गी का ऐसी अवस्था में सभा में प्रवेश पंडितों को रुचा नहीं, इसलिये उन्होंने नाक भौं सिकोड़ लिया । तो गार्गी बोली :

"ऐ पण्डितों ! नाक भौं क्यों सिकोड़ते हो ?"

पंडितों ने कहा—

"तुम एक अबला— ऐसी अवस्था में पुरुषों की सभा में जो आई हो !"

गार्गी तुरन्त बोली :

"कौन कहता है कि मैं अबला हूँ ? मैं सबला हूँ। अबला तो तुम हो जो अपना रक्षक बाहर ढूंढते हो । मैं अपना रक्षक आप हूँ । मैं यह शरीर नहीं हूँ । मैं तो सत्-चित्-आनन्द स्वरूप आत्मा हूं । मैं अपने आपको जानती हूँ ।"

जिसको जानकर गार्गी निर्भय बन गई थी उस आनन्द-स्वरूप अपने आत्मदेव को जो जान लेता है, उसी में स्थित हो जाता है, वह जीवन और मौत दोनों से परे, दोनों का द्रष्टा बन जाता है । उसे फिर कोई भय नहीं । वह सदैव आनन्द में रहता है ।

卐

चिंतन पराग

ईश्वर का बनाया हुआ द्वैत भले ही बना रहे । उसको मिथ्या समझ लेने मात्र से ब्रह्म का बोध हो सकता है । साधक का काम द्वैत को मिथ्या समझने से ही चलता है ।

इच्छाओं की तृप्ति का उपाय एक है कि इच्छाएं त्याग दी जाएं ।

जिस विवेकी ने इस जगत को सपने या इन्द्रजाल के समान समझ लिया है, जिसे दृष्ट नष्ट रूप में दिखने लगा है; वह दोषदर्शी विवेकी भला बताओ, इसमें अनुराग कैसे करे ?

ज्ञानी जागरण को सत्य समझना छोड़ देने पर फिर पहले की भांति अनुरक्त नहीं होता । ज्ञानी प्रत्येक वस्तु को अपना आत्मा समझता है ।

मुर्दे की कल्पना को बार बार मन में लाना काम वासना से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय बताया गया है । मुर्दे को पड़े हुए देखकर मन घबराने लगता है ।

परिणाम की क्यों परवाह करते हो ? अपनी तन्खवाह के बारे में कभी फिक्र मत करो । अज्ञानी लोग समझते हैं कि कार्य की सफलता में कार्य करने की अपेक्षा अधिक आनन्द है । अन्धों को यह मालूम नहीं कि किसी परिणाम से उतना सुख नहीं मिलता जितना काम से मिलता है ।

अपने विचारों को सदा वास्तविक आत्मा में रखो

और परिस्थितियों की परवाह मत करो ।

तब तक आपकी कोई हानि नहीं हो सकती, जब तक कि आप स्वयं उसे नहीं बुलाते । कोई तलवार तब तक नहीं काट सकती, जब तक आप यह न सोचें कि यह काटती है ।

ए पूर्ण ब्रह्म ! तेरे लिये कोई कर्तव्य या कार्य शेष नहीं है । सारी प्रकृति सांस रोके तेरी सेवा के लिये खड़ी है । संसार तेरी पूजा करने का अवसर पाकर अपने को सराह रहा है । क्या तू प्रकृति की शक्तियों को अपने चरणों में झुकने का अवसर देगा ?

अपने भीतर सत्य के प्रकाश को सदा चमकता रखो । भय और प्रलोभन का शैतान तुम्हारे पास नहीं फटकेगा ।

बाहर की बातों में कुछ भी
नहीं मान अपमान ।
अपना काम किये जा निशिदिन
इसमें ही सम्मान ।

जब दूसरे लोग तुम्हारी आलोचना, निंदा करते हों तब उन्हें रोकने की चेष्टा न करो । क्योंकि इन्हीं सब बातों के द्वारा तुममें सद्‌गुणों की वृद्धि होगी ।

जब तक तुम्हारा हृदय इतना दृढ़ नहीं है कि तुम मूर्खों के बकने पर स्थिर शांत बने रहो, अथवा तुममें इतनी सहनशीलता नहीं है कि अज्ञानी मूर्खों को क्षमा कर सको तब तक तुम अपने को कहीं ज्ञानी न समझ लेना ।

यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ तो सब चिंता और भयों से छूट जाते हो ।

किसी भी आकस्मिक दुर्घटना से धैर्य न छोड़ो, क्योंकि घबराहट से शक्ति तथा बुद्धि हर जाती है । किसी भी प्रकार की कठिनाईयों के आगे दुःखित न होकर गम्भीरतापूर्वक उनका सामना करो, तभी तुम निःसन्देह विजय प्राप्त करोगे । तुम कहीं भी हतोत्साहित होकर निराश न होओ ।

ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है ? वह कौन-सा रंज है जो मेरे आनन्द में विघ्न डाल सकता है ? मैं तो विश्व-ब्रह्माण्ड का प्रभु हूँ !

मैं बुद्धि का प्रभु हूँ, दिमाग का मालिक हूँ और मन का शासक हूँ ।

संसार मुझ में है, मैं संसार में नहीं आ सकता । विश्व मुझमें है, मैं विश्व में नहीं बंध सकता । सूर्य और नक्षत्र मुझमें उदय और अस्त होते हैं ।

देह और दुनियाँ दोनों ईश्वर के भीतर हैं-वही ईश्वर मैं हूँ ।

मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ । मेरा जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, मैं अजर अमर हूँ, मैं चिदानन्द आत्म-स्वरूप हूँ ।

मैं मिथ्या, तू मिथ्या, धर्म मिथ्या, कर्म मिथ्या और जगत मिथ्या । और....ऐसा प्रतीत होता है कि मैं

ही सर्वस्व हूँ । मैं ही सर्वज्ञ-सर्वगत आत्मा हूँ, अपना साक्षी, अपना प्रमाण मैं स्वयं ही हूँ ।

मैं केवल दृश्य मात्र का साक्षी हूँ । कदापि उन नाम रूपों में फंसा नहीं हूँ ।

मैं विशुद्ध हूँ । असंख्य ब्रह्माण्ड मुझ में पड़े हैं । मैं असंस्पर्श्य हूँ । मेरा स्वरूप निर्लिप्त है ।

मुझे दुःख से कोई भय नहीं है । मुझे समय की जरा भी चिन्ता नहीं । आत्मानन्दवाले को भय और आशंका कैसी ?

किसी भी डर को अपने पास मत फटकने दो ।

लोग यदि तुम्हारी बुराई करते हैं तो तुम उन्हें आशीर्वाद दो । ऐसे स्थान पर जाओ जहाँ लोग तुमसे घृणा करें ।

तुम तो मुक्त हो, पहले से ही मुक्त हो । सर्वदा कहो-मैं सदा आनन्द स्वरूप हूँ, म मुक्तस्वभाव हूँ, मैं अनन्त स्वरूप हूँ, मेरी आत्मा का आदि अन्त नहीं है । सभी मेरे आत्म स्वरूप हैं ।

प्रसन्नतापूर्वक अपमान सहन करने और नम्रता धारण करने से अभिमान की निवृत्ति होती है ।

किसी पवित्र स्थान पर जाओ तो वहाँ के अनुशासन का पालन करो । वहाँ चप्पलों की चटाक्-पटाक्, आभूषणों की खनखनाहट, भड़कीले वस्त्रों की फरफराहट आदि हमसे न हो इसका पूरा ध्यान रखो । कहीं भी

किसी के भी चित्त को या शांत वातावरण को अशांत करने का हमें कोई अधिकार नहीं है ।

अपने किसी भी दुःख या अशांति का कारण बाहर मत ढूंढो । बाहर की परिस्थिति या व्यक्तियों को दोष मत दो । कारण अपने भीतर ढूँढो । निर्दोष भाव से ढूँढोगे तो कारण भीतर ही मिल जाएगा । उसे दूर करने की चेष्टा करो । शांतचित्त रहने का यही बहुमूल्य उपाय है ।

जो आत्म अनुशासित हैं, वे ही शासन कर सकते हैं । ऐसा करने के लिये नाम जप करें, ध्यान करें, किसी आत्मनिष्ठ सन्त का पावन सांनिध्य प्राप्त करें । सर्व ओर से निर्भय एवं प्रसन्न बनने का यह श्रेष्ठ साधन है ।

विनम्र बनो, निरहंकारी बनो । स्वयं को बड़ा बताने की चेष्टा न करो । विनम्रता एवं निरभिमानता ही तुम्हें बड़ा बनाएगी । विनम्रता मनुष्य का बहुत बड़ा भूषण है ।

निर्मल दृष्टि रखो । किसी के दोष देखना यह बहुत बड़ा दुर्गुण है । छिद्रान्वेषी नहीं बनो । दूसरों के दोष देखना पाप अर्जन करना है । गुणग्राही बनो ।

साहित्य आदि के लिए प्राप्ति–स्थान

(१) संत श्री आशाराम आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद–३८०००५.

(२) श्री आशादीप म्यूझियम सेन्टर, घंटी के स्टेन्ड के सामने, बापूनगर चार रास्ता, अहमदाबाद ।

(३) श्री योग वेदान्त सेवा समिति, बडौदा ।

C/o. श्री पी. एस. पटेल, ११५, सरदारनगर सोसायटी, टी. आर. विद्यालय के पास, छाणी रोड़, बड़ौदा–३९०००२.

(४) संत श्री आशारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहांगीरपुरा, सुरत ।

(५) संत श्री लीलाशाह आश्रम, डीसा ।

(६) श्री हेमनदास जशुमल, लीबर्टी ग्लास मार्ट, स्टेशन रोड़, पालनपुर ।

(७) [redacted] सामने, [redacted] ।

(८) संत श्री आशाराम आश्रम, नरसींग गढ़ रोड़, पेट्रोलपंप के पीछे, गांधीनगर, भोपाल (म. प्र.) ।

(९) श्री अजयभाई शाह, २/६ मनोरमा गंज, इन्दौर (म. प्र.) फोन : ३५८१०, ७९४८०.

(१०) संत श्री आशाराम आश्रम, पंचेड (नामली), जि. रतलाम (म. प्र.)

❁ फकीरी मौत ❁

"हमारा सुख कहीं छिन न जाय—ऐसा भयभीत जीवन भी कोई जीवन है? यह तो मौत से भी बदतर है। इसलिए तो कहता हूँ कि निर्भय जीवन जीना हो, असली जीवन जीना हो तो फकीरी मौत को एक बार जान लो।

एक बार फकीरी मौत में डूबकर बाहर आ जाओ। फिर देखो संसार का कौन-सा भय तुम्हें भयभीत कर सकता है? तुम शाहों के शाह हो। ये परिस्थितियाँ, यह प्रकृति, यह संसार-सब तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, तुम्हारे आनन्द के लिए करवटें लेते नजर आएँगे। इसलिए कहता हूँ फकीरी मौत को आमन्त्रित करो।"

—पूज्यपाद आशारामजी बापू

पूज्यश्री के ये अनुभूति संपन्न वाक्य मनुष्य में नव स्फूर्ति का शंख फूंक देते हैं। जहाँ सारा जहाँ मृत्यु के भय से आक्रांत है वहाँ पूज्यश्री मनुष्य को उसके भीतर छिपे अमरत्व का संदेश देते हैं। इन वाक्यों में उनका पूरा जीवन झलकता है।

आज उनका सांनिध्य-लाभ लेकर अनेक अनेक लोग जीवन कृत कृत्य बना रहे हैं।

आवरण मुद्रक : नटवर स्मृति प्रिन्टर्स, अहमदाबाद